चतुर्थ खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता के राजपथ पर भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण गाड़ी द्वारा दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी से निकलकर कलकत्ता की ओर आ रहे हैं। संग में रामलाल और दो–एक भक्त हैं। फाटक से बाहर आते ही देखा, चार फजली आम हाथ में लिए मणि पैदल आ रहे हैं। मणि को देखकर गाड़ी थमवाने के लिए कहा। मणि ने गाड़ी के ऊपर सिर रखकर प्रणाम किया।

शनिवार, 21 जुलाई, 1883 ईसवी। आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा, समय चार का। ठाकुर अधर के घर जाएँगे, फिर श्रीयुक्त यदुमल्लिक के घर, सबके अन्त में श्री खेलात् घोष के घर जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति, सहास्य)*— तुम भी आ जाओ ना! हम अधर के घर जा रहे हैं।

मणि 'जो आज्ञा' कहकर गाड़ी में चढ़ गए।

मणि अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, इसीलिए संस्कार नहीं मानते। किन्तु कई दिन हुए ठाकुर के पास स्वीकार कर लिया था कि अधर का संस्कार है, तभी वे उनकी इतनी भक्ति करते हैं। घर लौट कर सोच कर देखा कि संस्कार के सम्बन्ध में अब भी उनका पूर्ण विश्वास नहीं हुआ है। जभी यह बात कहने के लिए ही आज ठाकुर के दर्शन करने आए हैं। ठाकुर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, अधर को तुम कैसा मानते हो?

मणि— जी, उनका खूब अनुराग है।

श्रीरामकृष्ण— अधर भी तुम्हारी बहुत बड़ाई करता है।

मणि कुछ क्षण चुप रहे। अब पूर्वजन्म के संस्कार की बात उठाते हैं।

(कुछ भी समझ में नहीं आता— अति गुह्य कथा)

मणि— मेरा 'पूर्वजन्म' और 'संस्कार' इत्यादि पर वैसा विश्वास नहीं है। इससे क्या मेरी भक्ति में कुछ हानि होगी?

श्रीरामकृष्ण— उनकी सृष्टि में सब कुछ हो सकता है— यह विश्वास रहने से ही हो जाता है। मैं जो सोच रहा हूँ, वही सत्य है और सब मत मिथ्या हैं— ऐसा भाव आने मत दिओ! उसके पश्चात् वे ही समझा देंगे।

''उनका काण्ड मनुष्य क्या समझेगा? अनन्त व्यापार! इसीलिए तो मैं वह समस्त समझने की ज़रा भी चेष्टा नहीं करता। सुन रखा है— उनकी सृष्टि में सब ही हो सकता है। तभी तो वैसी चिन्ता न करके केवल उनका ही चिन्तन करता हूँ। हनुमान से पूछा था, 'आज क्या तिथि है?' हनुमान ने कहा था— 'मैं तिथि-नक्षत्र नहीं जानता, केवल एक राम-चिन्तन करता हूँ।'

''उनका काण्ड क्या कुछ समझा जाता है जी! वे निकट ही हैं किन्तु पता नहीं लगता। बलराम कृष्ण को भगवान नहीं जानते थे।''

मणि— जी हाँ! आपने भीष्मदेव की जो बात बताई थी।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ, क्या बताया था? कहो तो ज़रा।

मणि— भीष्मदेव शरशय्या पर रो रहे थे। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण से कहा, 'भाई, यह कैसा आश्चर्य है! पितामह इतने ज्ञानी हैं, अथच मृत्यु का सोचकर रो रहे हैं!' श्रीकृष्ण ने कहा, 'उनसे पूछो न कि क्यों रो रहे हैं?' भीष्मपितामह बोले, 'यह सोचकर रो रहा हूँ कि भगवान के कार्य कुछ भी समझ नहीं पाया! हे कृष्ण, तुम इन पाण्डवों के संग-संग फिर रहे हो, पद-पद पर रक्षा कर रहे हो, तो भी इनकी विपदाओं का अन्त नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण— अपनी माया से सब ढक कर रखे हुए हैं, कुछ जानने नहीं देते। कामिनी-काञ्चन है माया। इस माया को हटाकर जो उनका दर्शन करता है, वह ही उनको देख पाता है। किसी को समझाते-समझाते (ईश्वर एक विशेष आश्चर्यपूर्ण व्यापार है) दिखला दिया, हठात् सामने देखा देश (कामारपुकुर) का एक तालाब और एक व्यक्ति ने पाना (काही) हटाकर मानो पानी पी लिया। वह जल स्फटिकवत् है। दिखलाया कि वही सच्चिदानन्द माया रूप पाना (काही) से ढका हुआ है— जो इसे हटाकर जल पीता है, वही प्राप्त करता है।

''सुन, तुम से एक अति गुह्य बात कहता हूँ। (तोमाय अति गुह्य कथा बोलछि!) झाऊतले की ओर बाह्य करते-करते देखा था— सामने चोरकोठरी के दरवाजे की भाँति एक है। कोठरी के भीतर क्या है— देख नहीं पा रहा हूँ। मैं नाखून द्वारा छिद्र करने लगा, किन्तु कर नहीं पा रहा हूँ। छेद करता हूँ, किन्तु फिर भर जाता है! तत्पश्चात् एक बार इतना बड़ा छेद हो गया।''

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने यह बात कह कर मौनावलम्बन कर लिया। अब फिर बातें करते हैं—

''ये समस्त बड़ी ऊँची बातें हैं— यह देख, मेरा मुख कोई मानो दबा-दबाकर बन्द किए जा रहा है!

''योनि में वास अपनी आँखों से देखा— कुकुर-कुकुरी के मैथुन के समय देखा था।

''उनके चैतन्य से जगत का चैतन्य है। एक-एक बार देखता हूँ, छोटी-छोटी मछलियों के भीतर वही चैतन्य किलबिल-किलबिल कर रहा है!''

गाड़ी शोभाबाजार के चौराहे दरमाहट के निकट उपस्थित हुई। ठाकुर फिर कह रहे हैं—

''एक-एक बार देखता हूँ वर्षा में जैसे पृथ्वी डूबी रहती है, उसी प्रकार इस चैतन्य में जगत डूबा हुआ है।

''इतना तो देखा हुआ है, किन्तु मुझे अभिमान नहीं होता।''

मणि *(सहास्य)*— आप! और फिर यह अभिमान!

श्रीरामकृष्ण— माइरि बोल्चि, (सौगन्ध खाकर कहता हूँ), मुझे यदि तनिक-सा भी अभिमान होता हो!

मणि— ग्रीस देश में एक व्यक्ति था। उसका नाम सोक्रेटिस (सुकरात) था। दैववाणी हुई थी कि सब व्यक्तियों में वह ही ज्ञानी है। वह व्यक्ति अवाक् हो गया था। तब निर्जन में बहुत देर चिन्तन करके समझ पाया था। तब उसने बन्धुओं से कहा कि 'मैं ही केवल समझ पाया हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता। किन्तु अन्य सब लोग कहते हैं, हमें बहुत ज्ञान हो गया है।' किन्तु वस्तुत: सब अज्ञानी हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं क्या जानता हूँ जो इतने लोग आते हैं! वैष्णवचरण बड़ा पण्डित था। वह कहा करता था कि तुम जो-जो बातें कहते हो, वे समस्त शास्त्रों में मिलती हैं। तो भी तुम्हारे पास क्यों आता हूँ, जानते हो? तुम्हारे मुख से उन्हें सुनने आता हूँ।

मणि— जी, समस्त बातें शास्त्र के संग में मिलती हैं। नवद्वीप गोस्वामी भी उस दिन पेनेटी में यही बात ही कह रहे थे। आपने कहा था कि 'गीता-गीता' कहते-कहते 'त्यागी-त्यागी' हो जाता है। वस्तुत: तागी होता है।*

श्रीरामकृष्ण— मेरे संग में क्या फिर किसी का कुछ मिलता है? किसी पण्डित या साधु का?

मणि— आपको ईश्वर ने स्वयं अपने हाथों से गढ़ा है। अन्य लोगों को मशीन में डालकर तैयार किया है, जैसे नियम के अनुसार सारी सृष्टि होती है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, रामलाल आदि से)*— अरे, देखो क्या कहता है यह!

ठाकुर का हास्य फिर थमता नहीं है। अन्त में कहते हैं—

''कसम खाकर कहता हूँ जो मुझे तनिक-सा भी अभिमान होता हो!''

---

* जो त्यागी, वही तागी। तग् धातू से 'तागी' होता है।

मणि— विद्या से एक उपकार होता है— यह बोध हो जाता है कि मैं कुछ नहीं जानता और मैं कुछ भी नहीं हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ठीक! ठीक! मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ— मैं कुछ भी नहीं! अच्छा तुम्हें अंग्रेज़ी-ज्योतिष में विश्वास है?

मणि— उनके नियम के अनुसार नूतन आविष्कार (discovery) हो सकता है, यूरेनस (Uranus) ग्रह की अव्यवस्थित चाल देख कर दूरबीन से खोज करके देखा है कि नूतन एक ग्रह (Neptune) झिल-मिल कर रहा है। और दोबारा ग्रहों की गणना हो सकती है।

श्रीरामकृष्ण— वैसे चाहे होता हो।

गाड़ी चल रही है,— प्राय: अधर के घर के निकट आ गई। ठाकुर मणि से कहते हैं—

''सत्य पर रहो, इससे ही ईश्वर-लाभ होगा।''

मणि— और भी एक बात आपने नवद्वीप गोस्वामी से कही थी, ''हे ईश्वर! मैं तुम्हें चाहता हूँ। देखो, जैसे अपनी भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य में मुग्ध न करना! मैं तुम्हें चाहता हूँ।''

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यही तो आन्तरिक कहना होगा।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त अधरसेन के घर कीर्त्तनानन्द में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अधर के घर आए हैं। रामलाल, मास्टर, अधर और अन्य-अन्य भक्त उनके पास बैठकखाने में बैठे हुए हैं। मुहल्ले के दो-चार जन ठाकुर को मिलने आए हैं। राखाल के पिता कलकत्ता में हैं— राखाल वहीं पर ही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(अधर के प्रति)*— क्यों, राखाल को खबर नहीं दी?

अधर— जी हाँ, उन्हें खबर दी गई है।

राखाल के लिए ठाकुर को चंचल, व्यग्र (उतावला) देखकर, अधर ने दोबारा और कुछ कहे बिना अपनी गाड़ी में राखाल को ले आने के लिए एक जन भेज दिया।

अधर ठाकुर के पास बैठ गए। आज ठाकुर के दर्शनों के लिए अधर व्याकुल हुए थे। ठाकुर के यहाँ आने की बात पहले से निश्चित नहीं थी। ईश्वर की इच्छा से वे आ गए हैं।

अधर— आप कई दिन आए नहीं। मैंने आज पुकारा था— ऐसा कि आँखों से जल बहने लगा था।

श्रीरामकृष्ण *(प्रसन्न होकर, सहास्य)*— कहते क्या हो जी!

सन्ध्या हो गई। बैठक में रोशनी कर दी गई। ठाकुर ने हाथ जोड़कर जगन्माता को प्रणाम करके नि:शब्द शायद मूल-मन्त्र जप किया। फिर मधुर-स्वर में नाम करते हैं। कह रहे हैं— 'गोविन्द, गोविन्द, सच्चिदानन्द, हरिबोल! हरिबोल!' नाम ले रहे हैं, और मानो मधु-वर्षण हो रहा है। भक्तगण अवाक् होकर वही नाम-सुधा-पान कर रहे हैं। श्रीयुक्त रामलाल अब गाना गाते हैं—

भुवन भुलाइलि मा हरमोहिनी,
मूलाधारे महोत्पले, वीणावाद्य-विनोदिनी।
शरीर शारीर यन्त्रे सुषुम्नादि त्रय तन्त्रे,
गुण भेदे महामन्त्रे, तिन ग्राम-सञ्चारिणी।
आधार भैरवाकार षड़दले श्रीराग आर,
मणिपुरेते मल्लार, बसन्ते हृद् प्रकाशिनी।
विशुद्ध हिन्दोल सुरे, कर्णाटक आज्ञापुरे,
तान-मान-लयसुरे, त्रिसप्त-सुरभेदिनी।
महामाया मोहपाशे, बद्धकर अनायासे,
तत्त्व लये तत्त्वाकाशे स्थिर आछे सौदामिनी।
श्री नन्दकुमारे कय, तत्त्व ना निश्चय होय,
तव तत्त्व गुणत्रय, काकीमुख आच्छादिनी।

[भावार्थ— माँ! हरमोहिनी, आपने ब्रह्माण्ड को भुला रखा है। माँ! आप मूलाधार महापद्म में वीणा लेकर विनोद करती रहती हो। देही रूप में शरीर रूपी यन्त्र पर अपने महामन्त्र द्वारा सुषुम्नादि तीन तारों पर तीन गुणों को भेदन करके तीनों लोकों में संचार करती रहती हो। आपका आधार (स्वाधिष्ठान) षड्दल पद्म में भैरव के आधार का है। उसे आप श्रीराग रूप में और मणिपुर पद मल्हार राग रूप में और हृदय पद को वसन्त राग रूप में प्रकाशित करती रहती हो। आप विशुद्ध पद हिन्दोल राग के सुर में और आज्ञा पद्म में कर्णाटक के रूप में तान-मानलय सुर से त्रिसप्त सुरों का भेदन करती हो। आप महामाया हो। मोहपाश में अनायास (सहज ही) बाँध लेती हो, और स्वयं तत्त्व में लीन होकर तत्त्वाकाश में सौदामिनी (विद्युत्) रूप में स्थिर रहती हो। श्री नन्दकुमार कहते हैं, इस तत्त्व का निश्चय तो नहीं होता किन्तु आप कोकिला के स्वर को आवृत्त करने वाली हो और आपका तत्त्व है गुणत्रय— सत्त्व, रज, तम।]

रामलाल ने फिर एक और गाया—

भवदारा भयहरा नाम शुनेछि तोमार,
ताइते एबार दिएछि भार तारो तारो ना तारो मा।
तुमि मा ब्रह्माण्डधारी ब्रह्माण्ड व्यापिके,
के जाने तोमारे तुमि काली कि राधिके,
घटे घटे तुमि घटे आछो गो जननी,
मूलाधार कमले थाको मा कुलकुण्डलिनी।
तदूर्ध्वेते आछे मागो नामे स्वाधिष्ठान,
चतुर्दल पद्मे तथाय आछो अधिष्ठान।
चतुर्दले थाको तुमि कुलकुण्डलिनी,
षड़्दल वज्रासने बासो मा आपनि।
तदूर्ध्वेते नाभिस्थान मा मणिपुर कय,
नीलवर्णेर दशदल पद्म जे तथाय,
सुषुम्नार पथ दिये एशो गो जननी,
कमले कमले थाको कमले कामिनी।
तदूर्ध्वेते आछे मागो सुधा सरोवर,
रक्तवर्णेर द्वादशदल पद्म मनोहर,
पादपद्म दिये यदि ए पद्म प्रकाश,
(मा) हृदे आछे विभावरी तिमिर विनाश।

तदूर्ध्वे ते आछे मागो नाम कण्ठस्थल,
धूम्रवर्णेर पद्म आछे होये षोड़शदल।
सेई पद्म मध्ये आछे अम्बुज आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।
तदूर्ध्वे ललाटे स्थान मा आछे द्विदल पद्म,
सदाय आछये मन होइये आबद्ध।
मन जे माने ना आमार मन भालो नय,
द्विदले बोसिया रंग देखये सदाय।
तदूर्ध्वे मस्तके स्थान मा अति मनोहर,
सहस्रदल पद्म आछे ताहार भितर।
तथाय परम शिव आछेन आपनि,
सेई शिवेर काछे बोशो शिवे मा आपनि।
तुमि आद्याशक्ति मा जितेन्द्रिय नारी,
योगीन्द्र मुनीन्द्र भावे नगेन्द्र कुमारी।
हर शक्ति हर शक्ति सुदनेर एबार,
येनो ना आसिते होय मा भव पारावार।
तुमि आद्याशक्ति मागो तुमि पञ्चतत्त्व,
के जाने तोमारे तुमि तुमिइ तत्त्वातीत।
ओ मा भक्त जन्य चराचरे तुमि से साकार,
पञ्चे पञ्चे लय हले तुमि निराकार।

[भावार्थ— हे भवानी, मैंने तुम्हारा भय-हरण करने वाला नाम सुना है, तभी तो इस बार भार दिया है। अब तुम चाहे तारो या न तारो। तुम माँ, ब्रह्माण्ड-धारिणी हो, ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो। कौन जाने कि तुम काली हो या राधा! हे माँ तुम घट-घट में हो। मूलाधार के चतुर्दल कमल में तुम कुल-कुण्डलिनी हो। तुम्हीं फिर सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल के वज्रासन पर पहुँचती हो। इसी प्रकार माँ उसके ऊपर नाभिस्थान में मणिपुर चक्र के नीलवर्ण दशदल कमल में पहुँचती हो। सुषुम्नापथ से हे जननी! कमले कामिनी! तुम ऊर्ध्वोर्ध्व कमलों में रहती हो। उसके ऊपर है माँ, सुधा-सरोवर में रक्तवर्ण द्वादशदल मनोहर पद्म। उसे अपने पादपद्म द्वारा यदि तुम विकसित कर दो तो हृदय के अज्ञानान्धकार का नाश हो जाता है। इसके ऊपर कण्ठस्थल में धूम्रवर्ण षोडशदल पद्म है, उसी कमल में है अम्बुज आकाश। उस आकाश के रुद्ध होने पर सब ही आकाश है। उसके ऊपर ललाट स्थान पर द्विदल पद्म है, वहाँ मन सदा आबद्ध है, वहीं

द्विदल में रहकर सदा मजा चखना चाहता है। उसके ऊपर मस्तक के अति मनोहर स्थान में सहस्रदल पद्म में परमशिव स्वयं विराजमान हैं। हे माँ! उसी शिव के निकट तुम आद्याशक्ति जितेन्द्रिय नारी के रूप में हो। योगीन्द्र, मुनीन्द्र नगेन्द्रकुमारी (दुर्गा) के रूप में तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम शिव की शक्ति हो। मेरी वासनाओं का नाश कर दो, ताकि इस संसार में फिर न आना हो। माँ, तुम आद्याशक्ति हो, पञ्चतत्त्व हो और तुम्हीं तत्त्वों से परे हो। भक्त के लिए तुम साकार हो, पञ्चतत्त्वों में लीन होने पर तुम निराकार हो।]

(निराकार सच्चिदानन्द-दर्शन— षट्चक्र-भेद, नाद-भेद और समाधि)

श्रीयुक्त रामलाल जब गा रहे हैं—

तदूर्ध्वेते आछे मागो नाम कण्ठस्थल,
धूम्रवर्णेर पद्म आछे होये षोडशदल,
सेइ पद्म मध्ये आछे अम्बुज आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।

तब ठाकुर श्रीरामकृष्ण मास्टर से कहते हैं—

''यही सुन, इसका ही नाम है निराकार सच्चिदानन्द-दर्शन। विशुद्धचक्र के भेदन हो जाने पर सब ही आकाश है।''

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— इस माया-जीव-जगत को पार कर जाने पर ही तब नित्य में पहुँचा जाता है। नाद-भेद हो जाने पर ही तब समाधि होती है। ॐकार-साधन करते-करते नाद-भेद होता है, फिर समाधि होती है।

तृतीय परिच्छेद

(यदुमल्लिक की बाड़ी— सिंहवाहिनी के सामने— 'समाधिमन्दिर' में)

अपने घर में अधर ने ठाकुर की फल-मूल, मिठाई आदि देकर सेवा की। ठाकुर ने कहा आज यदुमल्लिक के घर जाना होगा।

ठाकुर यदुमल्लिक के घर आए हैं। आज आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा। रात्रि ज्योत्स्नामयी। जिस कमरे में सिंहवाहिनी की सेवा की है, ठाकुर

उसी कक्ष में उपस्थित हुए। माँ ने सचन्दन पुष्प और पुष्प-माला द्वारा अर्चित होकर अपूर्व श्री धारण की हुई है। सम्मुख पुरोहित बैठे हैं। प्रतिमा के सामने कमरे में ज्योति जल रही है। सांगोपांगों के मध्य एकजन को एक रुपया देकर प्रणाम करने के लिए ठाकुर ने कहा 'क्योंकि देवता के निकट आने पर कुछ प्रणामी देनी चाहिए।'

ठाकुर सिंहवाहिनी के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं। पीछे भक्तगण हाथ जोड़कर खड़े हैं।

ठाकुर अनेक क्षण तक दर्शन करते हैं।

कैसा आश्चर्य, दर्शन करते-करते एकदम समाधिस्थ! पत्थर की मूर्त्तिवत् निस्तब्ध भाव में खड़े हुए हैं। नयन पलकशून्य!

अनेक क्षण पश्चात् दीर्घ नि:श्वास छोड़ा। समाधि भंग हो गई। मानो नशे में मतवाले होकर कहते हैं— माँ आसि गो! (माँ, आ रहा हूँ जी!)

किन्तु चल नहीं पा रहे हैं— उसी एक भाव में खड़े हुए हैं।

तब रामलाल से कहते हैं,
''तुम वही गाओ,— तब ही मैं ठीक होऊँगा।'' रामलाल गाते हैं—

भुवन भुलाइलि माँ हरमोहिनी।

गाना समाप्त हुआ।

अब ठाकुर बैठकखाने की ओर आ रहे हैं— भक्तों के संग। आते समय बीच में एक बार कहते हैं— माँ, आमार हृदये थाको माँ! (माँ, मेरे हृदय में रहो माँ!)

श्रीयुक्त यदुमल्लिक अपने जनों के साथ बैठक में बैठे हैं। ठाकुर भाव में ही हैं, आकर गा रहे हैं—

गो आनन्दमयी होये माँ आमाय निरानन्द करो ना।
ओ माँ ओ दूटि चरण बिने आमार मन, अन्य किछु आर जाने ना॥
तपन-तनय आमाय मन्द कय कि बोलिबो ताय बोलो ना।
भवानी बोलिये भवे जाबो चले, मने छिलो एई बासना।
अकूल पाथारे डुबाबि आमारे (ओ माँ) स्वपनेओ तातो जानि ना॥

आमि अहर्निशि श्रीदुर्गा नामे भासि, तबु दुःख राशि गेलो ना।
एबार यदि मरि ओ हरसुन्दरी तोर दुर्गानाम आर केओ लोबे ना।

[भावार्थ— ओ माँ, आनन्दमयी होकर आप मुझे निरानन्द मत करो। तुम्हारे दो चरणों के बिना मेरा मन और कुछ नहीं जानता। तपन-तनय (यमराज) मुझे बुरा कहता है। मैं उसे क्या कहूँ, आप बता दो। मन में मेरे तो यही वासना थी कि भवानी कहते हुए मैं संसार, भव-सागर में चलता चलूँगा। आप मुझे अकूल में, अथाह समुद्र में डुबो देंगी— ऐसा तो माँ स्वप्न में भी नहीं जानता था। मैं रात-दिन श्रीदुर्गा-नाम में तैर रहा हूँ, तब भी दुःख-राशि नहीं गई। अब की बार यदि मैं मरता हूँ तो हे हरसुन्दरि! तेरा दुर्गा नाम फिर कोई नहीं लेगा।]

गाना समाप्त होने पर फिर और भावोन्मत्त होकर यदु से कहते हैं, ''क्यों बाबू, क्या गाऊँ? 'माँ आमि कि आटाशे छेले'— क्या इस गाने को गाऊँ?'' यह कहकर ठाकुर गाते हैं—

मा आमि कि आटाशे छेले।
आमि भय करिने चोख रांगाले॥
सम्पद आमार ओ रांगापद शिव धरेन जा हृद्कमले।
आमार विषय चाइते गेले बिडम्बना कतइ छले॥
शिवेर दलिल सइ रेखेछि हृदयेते तुले।
एबार करबो नालिश नाथेर आगे, डिक्रि लबो एक सओआले।
जानाइबो केमन छेले मोकद्दमाय दाँड़ाइले।
जखन गुरुदत्त दस्ताविज, गुजराइबो मिछिलो चाले॥
माये पोये मोकद्दमा, धूम होबे रामप्रसाद बोले।
आमि क्षान्त होबो जखन आमाय शान्त करे लवे कोले॥

[भावार्थ— माँ, मैं क्या अठमासा (दुर्बल) बेटा हूँ? मैं आँखें लाल करने से डरता नहीं। मेरी सम्पद तो वे लाल चरण हैं, जो शिव अपने हृदय-कमल में रखते हैं। जब मैं वह सम्पत्ति माँगता हूँ तो मुझे छल से टरका दिया जाता है। शिव की हस्ताक्षरित दलील मैंने हृदय में उठाकर रख दी है। अब की बार नाथ के आगे मुकदमा करूँगा और एक ही बात पर डिक्री लूँगा, जनवा दूँगा कि पुत्र मुकदमे में कैसे खड़ा हुआ! रामप्रसाद कहते हैं— माँ-बेटे का मुकदमा होने पर खूब धूम पड़ जाएगी। मैं तो तब शान्त होऊँगा जब मुझे शान्त करके अपने अंक में ले लोगी।]

भाव तनिक उपशम होने पर कहते हैं, ''आमि मायेर प्रसाद खाबो।''

(मैं माँ का प्रसाद खाऊँगा।)

श्री सिंहवाहिनी का प्रसाद लाकर ठाकुर को दिया गया।

श्रीयुक्त यदुमल्लिक बैठे हुए हैं। पास ही कुर्सियों पर कई बन्धु-बान्धव बैठे हुए हैं। उनमें कई मोसाहेब भी हैं।

यदुमल्लिक की ओर मुख करके ठाकुर चेयर पर बैठे हैं और सहास्य बातें कर रहे हैं। ठाकुर के संगी भक्त कोई-कोई साथ के कमरे में हैं। मास्टर और दो-एक भक्त ठाकुर के पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अच्छा, तुम भाँड़ (ठग) क्यों रखते हो?
यदु *(सहास्य)*— भाँड़ भी हो चाहे, तुम उद्धार नहीं करोगे?
श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गंगा मदेर कुपो के पारे ना! (गंगा मद के कुप्पों को क्या नहीं तारती!)।

(सत्यवाणी और श्रीरामकृष्ण— पुरुष की एक कथा)

यदु ने ठाकुर से प्रतिज्ञा की थी कि घर में चण्डी का गाना करवाएँगे। काफी दिन हो चुके हैं किन्तु चण्डी का गाना नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण— चण्डी का गाना कहाँ है जी?
यदु— बड़े काम थे। इसीलिए इतने दिन नहीं हुआ।
श्रीरामकृष्ण— से कि! पुरुष मानुषेर एक कथा! (वह क्या! पुरुष मानुष की एक वाणी [होती है]!)
यदु— पुरुष की बात, हाथी के दाँत।
श्रीरामकृष्ण— कैसे, पुरुष की एक बात! क्या कहते हो?
यदु *(सहास्य)*— वह तो है।
श्रीरामकृष्ण— तुम हिसाबी लोग हो। बड़ा हिसाब करके काम करते हो— ब्राह्मण की गाय, खाएगी कम, गोबर देगी अधिक और धारों देगी दूध *(सबका हास्य)*।

ठाकुर कुछ देर बाद यदु से कहते हैं—

समझा हूँ, तुम रामजीवनपुर के शील के जैसे हो— आधा गरम, आधा ठण्डा।

तुम्हारा ईश्वर में भी मन है, और फिर संसार में भी है।

ठाकुर ने दो-एक भक्तों के संग यदु के घर में माँ का प्रसाद— फल-मूल, मिठाई आदि खाया। अब खेलात् घोष के घर जाएँगे।

चतुर्थ परिच्छेद

(श्री खेलात् घोष के घर में शुभागमन— वैष्णव को शिक्षा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्री खेलात् घोष के घर में प्रवेश कर रहे हैं। रात्रि प्राय: दस। घर और घर का बड़ा आँगन चाँद की रोशनी से रोशन हो रहा है। घर में प्रवेश करते-करते ठाकुर भावाविष्ट हो गए हैं। संग में रामलाल, मास्टर और दो-एक भक्त हैं। बड़े चौक के चारों ओर कमरे, दो मंजिल पर चढ़कर बरामदे से एकदम दक्षिण में काफी जाकर फिर पूर्व और फिर पश्चिमास्य होकर काफी आकर, अन्त:पुर की ओर जाना होता है।

उस ओर आकर लगा कि मानो घर में कोई नहीं है। केवल कुछ बड़े-बड़े कमरे और सामने दीर्घ बरामदा पड़ा है।

ठाकुर को उत्तर-पूर्व के एक कमरे में बिठाया गया। अब भी भावस्थ हैं। घर वाले भक्त को बुलाया गया। उन्होंने आकर अभ्यर्थना की। वे वैष्णव हैं— अंगों पर तिलक आदि छापे और हाथ में हरिनाम की झोली है। वह व्यक्ति प्राचीन (वृद्ध, पुराने जमाने का) है। वह खेलात् घोष का सम्बन्धी है। वे दक्षिणेश्वर जाकर कभी-कभी ठाकुर का दर्शन किया करते थे। किन्तु किसी-किसी वैष्णव का भाव अति संकीर्ण होता है। वे शाक्त अथवा ज्ञानियों की बड़ी निन्दा करते हैं। ठाकुर अब बातें करते हैं—

(ठाकुर का सर्वधर्म-समन्वय—The Religion of Love)

श्रीरामकृष्ण *(वैष्णव भक्त और अन्य भक्तों के प्रति)*— 'मेरा धर्म ठीक है और दूसरों का धर्म गलत'— यह मत ठीक नहीं है। ईश्वर एक, एक के

अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। उनको भिन्न-भिन्न नामों द्वारा भिन्न-भिन्न लोग पुकारते हैं। कोई कहता है गॉड, कोई कहता है अल्लाह, कोई कहता है कृष्ण, कोई कहता है शिव, कोई कहता है ब्रह्म। जैसे तालाब में जल है— एक घाट के लोग कहते हैं जल, और एक घाट के लोग कहते हैं वाटर, और एक घाट के लोग कहते हैं पानी। हिन्दू कहते हैं जल, क्रिश्चियन कहते हैं वाटर, मुसलमान कहते हैं पानी— किन्तु वस्तु एक। मत-पथ। एक-एक धर्म का मत एक-एक पथ है, जो ईश्वर की ओर ले जाता है— जैसे नदियाँ नाना ओर से आकर सागर-संगम में मिलित हो जाती हैं।

''वेद-पुराण-तन्त्र में प्रतिपाद्य एक ही सच्चिदानन्द है।

''वेद में सच्चिदानन्द (ब्रह्म)। पुराण में सच्चिदानन्द (कृष्ण, राम आदि)। तन्त्र में सच्चिदानन्द (शिव)। सच्चिदानन्द ब्रह्म, सच्चिदानन्द कृष्ण, सच्चिदानन्द शिव।''

सब चुप हैं।

वैष्णव भक्त— महाशय, ईश्वर का चिन्तन ही क्यों करूँ?

(वैष्णव को शिक्षा— जीवन्मुक्त कौन? उत्तम भक्त कौन? ईश्वर-दर्शन के लक्षण)

श्रीरामकृष्ण— ऐसा बोध यदि रहे तब तो वह जीवन्मुक्त है। किन्तु सबको ऐसा विश्वास नहीं होता, केवल मुख से कहता है— 'ईश्वर हैं, उनकी इच्छा से समस्त हो रहा है।' विषयीगण सुन तो रखते हैं, विश्वास नहीं करते।

''विषयियों का ईश्वर कैसा है, जानते हो? चाची-ताई के झगड़े सुनकर बच्चे जैसे झगड़ा करते हुए कहते हैं, मेरे ईश्वर हैं।

''सब ही क्या उनको धारण कर सकते हैं? उन्होंने भले लोग बनाए हैं, बुरे लोग बनाए हैं; भक्त बनाए हैं, अभक्त बनाए हैं; विश्वासी बनाए हैं, अविश्वासी बनाए हैं। उनकी लीला में सब विचित्रता है। उनकी शक्ति का कहीं पर अधिक प्रकाश है, कहीं पर कम प्रकाश है। सूर्य का प्रकाश मिट्टी

की अपेक्षा जल में अधिक पड़ता है, और फिर जल की अपेक्षा दर्पण में और अधिक प्रकाश पड़ता है।

''और फिर भक्तों की श्रेणियाँ हैं— उत्तम भक्त, मध्यम भक्त, अधम भक्त। गीता में यह सब है।''

वैष्णव— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— अधम भक्त कहता है, ईश्वर है— वहाँ आकाश के भीतर बहुत दूर है। मध्यम भक्त कहता है, ईश्वर हैं सर्वभूत में चैतन्यरूप में— प्राणरूप में। उत्तम भक्त कहता है ईश्वर ही स्वयं सब कुछ बने हुए हैं, जो कुछ देख रहा हूँ वह ईश्वर का ही एक रूप है। वे ही माया, जीव, जगत— ये सब कुछ बने हुए हैं, उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

वैष्णव भक्त— ऐसी अवस्था क्या किसी की होती है?

श्रीरामकृष्ण— उनका दर्शन बिना किए ऐसी अवस्था नहीं होती। किन्तु दर्शन किए हैं या नहीं, उसका लक्षण है। कभी वह उन्मादवत् हँसता, रोता, नाचता, गाता है। अथवा कभी बालकवत्— पाँच वर्ष के बालक की अवस्था हो जाती है— सरल, उदार, अहंकार नहीं, किसी वस्तु पर आसक्ति नहीं, किसी गुण के वश में नहीं। सदा आनन्दमय! कभी पिशाचवत्— शुचि-अशुचि भेद-बुद्धि नहीं रहती, आचार-अनाचार एक हो जाते हैं। अथवा कभी जड़वत्— मानो कुछ देख लिया है। जभी किसी प्रकार का कर्म नहीं कर सकता, किसी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकता।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण क्या अपनी समस्त अवस्थाएँ इंगित कर रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण *(वैष्णव भक्त के प्रति)*— 'तुम और तुम्हारा'— यह है ज्ञान। 'मैं और मेरा'— यह है अज्ञान।

''हे ईश्वर, तुम कर्त्ता हो और मैं अकर्त्ता हूँ— यह ज्ञान है। हे ईश्वर, समस्त तुम्हारा है। देह, मन, गृह, परिवार, जीव, जगत— यह सब तुम्हारा है, मेरा कुछ नहीं— इसी का ही नाम है ज्ञान।

''जो अज्ञानी है वह कहता है, ईश्वर 'वहाँ हैं, वहाँ'— बहुत दूर। जो

ज्ञानी है वह जानता है ईश्वर 'यहाँ हैं, यहाँ'— अति निकट, हृदय के बीच अन्तर्यामी रूप में, और फिर (उन्होंने ही) अपने-आप एक-एक रूप धारण किया हुआ है।''